कुमार जिनदत्त

जैन चित्र कथाऐं

सुनो सुनाये सत्य कथाएं

आशीर्वाद

परम पूज्या 105 आर्यिका स्याद्वादमती माता जी

प्रकाशक	:	आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थ माला
कृति	:	कुमार जिनदत्त
©	:	सर्वाधिकार सुरक्षित
लेखक	:	ब्र. धर्मचन्द शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य
पुष्प नं	:	39
मूल्य	:	20.00
प्राप्ति स्थान	:	जैन मंदिर गुलाब वाटिका लोनी रोड़ जिला गाजियाबाद (उ.प्र.)
☎	:	914-600074 S.T.D. 0575-4600074

कुमार जिनदत्त

जंबूद्वीप के दक्षिण भाग में भरत क्षेत्र है। उस क्षेत्र में अनंग नाम का एक देश था। यह देश अपनी सुन्दरता, सुख एवं वैभव में स्वर्ग के समान था। इस देश का राजा का नाम था– चंद्रशेखर। उसका यश चारों दिशाओं में फैला हुआ था। उसके शत्रु, उसे देखते ही पराजित हो जाते थे। राजा चन्द्रशेखर की पत्नी का नाम मदन-सुन्दरी था। वह राजा की अत्यंत प्रिय रानी थी।

इसी नगर में जीवदेव नामक श्रेष्ठी (सेठ) था। वह वाणिकों में श्रेष्ठ और सबसे धनी था। वह मन-कर्म-वचन से अत्यंत धर्मात्मा था। वह प्रतिदिन श्री जिनेन्द्र भगवान की उत्तम पदार्थों से सेवा-पूजा किया करता था। वह दीनों पर दया करता और सदा सत्य वचन बोलता। जीवदेव ने अनेक जिनालयों का निर्माण कराया था। उसके जीवंजसा नाम की परम सुन्दरी पत्नी थी। वह अत्यंत विनम्र, सती और साध्वी स्त्री थी।

एक दिन जीवंजसा, पूजा सामग्री लेकर सपरिवार जिनालय में गई। वहां पूजा-अर्चना के बाद वह जिनालय में विराजमान मुनिराजों के दर्शनार्थ सभा में गई। उस सभा में समस्त महाराज श्री एक पौराणिक कथा का वर्णन कर रहे थे। उन्होंने उस कथा में पुत्रवती स्त्रियों की प्रशंसा और पुत्र-विहीन स्त्रियों की निन्दा की। यह सुनकर जीवजंसा सेठानी का चेहरा उदास हो गया। वह शोक सागर में डूब गयी। कारण यह था कि उसके कोई संतान न थी। वह सोचने लगी कि पुत्र के बिना मेरी स्थिति वही हैं जैसे कमल पुष्प के बिना सरोवर की होती है। उसे अपना जीवन व्यर्थ प्रतीत होने लगा। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। उसे दुखी देखकर पूरी सभा में चिंता व्याप्त हो गई। तब गुरुवर मुनिराज ने कहा– हे विशुद्ध हृदय वाली सेठानी! तुम दुखी मत हो। तुम्हारा मनोरथ तो शीघ्र ही पूर्ण होने वाला है। हे भद्रे ! तुम्हारा पुत्र चन्द्रमा के समान सुंदर, कीर्तिवान, उदार और वीरता के गुणों से पूर्ण होगा। वह धर्म, अर्थ और काम- तीनों में निपुण होगा। इसलिए तुम दुखी मत हो।

आचार्य मुनिराज के वचनों को सुनकर सेठानी का दुख दूर हो गया और उसका हृदय आंनंद से भर गया। फिर वह मुनिराज को नमस्कार कर अपने घर लौट आयी। धीरे-धीरे इस घटना की चर्चा पूरे नगर में फैल गयी। सेठ जीवदेव ने भी यह शुभ समाचार सुना और अत्यंत प्रसन्न हुआ।

कुछ समय बाद सेठानी ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया। सेठ ने पुत्र के जन्म पर उत्सव किया। उन्होंने अपने पुत्र का नाम 'जिनदत्त' रखा।

बालक जिनदत्त समस्त गुणों से संपन्न होता हुआ दिनोंदिन बढ़ने लगा। धीरे-धीरे उसने सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। फिर किशोरावस्था में ही उसने शस्त्र-विद्या भी सीख ली। अपने परिवार से उसने लौकिक व्यवहार तो सहज ही ग्रहण कर लिया था।

युवावस्था को प्राप्त करने पर जिनदत्त अत्यंत आकर्षक दिखने लगा था। सभी लोग उसे देखकर मोहित हो जाते थे।

जिनदत्त पूजा-पाठ में पूरी रुचि लेता। अपने कार्य को मनोयोग से करता। किंतु वह स्त्रियों से दूर रहता। विवाह के प्रति उसकी कोई रुचि न थी। उसके परिवार के लोग अब इसी बात से चिंतित रहने लगे थे कि इसे विवाह के लिए कैसे मनाएँ। सभी ने अपने-अपने ढंग से उपाय किए, किंतु किसी को सफलता न मिली।

एक दिन जिनदत्त जिनालय गया। उस जिनालय के द्वार पर बनी एक सुंदर नारी के चित्र को देखकर अचानक रुक गया। उस नारी के चित्र को वह टकटकी लगाकर देखता रहा। उसके सौंदर्य को देखकर जिनदत्त मुग्ध हो उठा था। वह सोचने लगा कि आज तक मेरा मन किसी भी स्त्री को देखकर मोहित नहीं हुआ। पर आज इस चित्र को देखकर मुझे ये क्या हो गया हैं? क्या इसके साथ मेरा पूर्व भव का प्रेम संबंध है जो आज प्रकट हुआ है। वरना इस चित्र मात्र को देखने से मेरा मन इसके प्रति क्यों आकर्षित हुआ हैं? अब यह रुपसी अगर मुझे न मिली, तो मेरा जीवन व्यर्थ है। यह चित्र निराधार नहीं हो सकता। यह अवश्य ही किसी जीवित सुंदरी की अनुकृति है। यदि संसार का सुख भोगना है तो इसी को अपनाना होगा, अन्यथा सब व्यर्थ हैं।

जब जिनदत्त इन विचारों में खोया हुआ था, उसके पास खड़े मित्र ने, उसके मन के भावों को पढ़ लिया। उसने हंसकर कहा– 'क्यों मित्र ? तुम्हारे मन को किसने अपने वश में कर लिया है? इस तरह भाव विभोर होकर यहां खड़े रहने का क्या अर्थ हैं?

जिनदत्त ने कहा– 'तुम जान तो गए हों? फिर क्यों पूछते हो?

इसके बाद जिनदत्त अपने उस मित्र के साथ जिनालय के अंदर आया। उसने प्रभु की स्तुति की। फिर जब वापस लौटा तो पुन: उस चित्र को देखता हुआ लौट चला।

घर आने पर जिनदत्त का मन बहुत बैचेन था। उसकी नींद उड़ गयी। मन का चैन समाप्त हो गया। किसी से हंसना-बोलना भी अच्छा नहीं लगता था। वह हर क्षण उसी कामिनी का चिंतन करने लगा। वह सोचने लगा कि सुन्दरी के वियोग में इस तरह छटपटाने से मर जाना बेहतर हैं। वह तरह-तरह की बातें सोचता। उसको हर क्षण

केवल उसी सुन्दरी का ध्यान रहने लगा।

अपने मित्र जिनदत्त की दशा देखकर वह मित्र, जिनदत्त के पिता के पास गया और उन्हें सारी बात बताई। उसे सुनकर जिनदत्त का पिता बहुत प्रसन्न हुआ। इसके बाद वह पुत्र जिनदत्त के पास गया। जिनदत्त की हालत देखकर उसे चिंता हुई। उसने जिनदत्त को समझाकर कहा– –हे पुत्र ! चिंता छोड़ो। तुम स्नान करके भोजन करो। मैं शीघ्र ही तुम्हारे काम को पूरा करूँगा। जिस पर भी तुम्हारा मन मुग्ध हुआ है, उसे लाकर दूंगा। वह राज कन्या हो या विद्याधर कन्या। जो भी वह है, उसे शीघ्र तुम्हारे पास ला दूंगा।

इस प्रकार आश्वासन देकर सेठ जिनालय में गया और चित्र को देखकर सोचने लगा कि इतनी सुन्दर स्त्री कौन हो सकती है? जो भी हो। इसे देखकर मेरा मन इसमें लीन हुआ है, तो इसके बारे में पता लगाना चाहिए। तब उसने उस चित्र के बनाने वाले चित्रकार को बुलवाया और पूछा कि वह कन्या कौन है? कहां है और कैसी हैं?

चित्रकार ने कहा- 'हे श्रेष्ठी ! यह चंपानगरी के श्रेष्ठी की पत्नी विमला से उत्पन्न 'विमलामती' नाम की कन्या है। एक दिन वह अपनी सखियों के साथ गेंद खेल रही थी। तभी मैंने उसे देखा था। उसका रुप मेरी आंखों में बस गया था सो मैंने यहां आकर उसे चित्रित कर दिया। वास्तव में वह जितनी सुंदर हैं, यह चित्र उसका दस क्यां सौवां भाग भी नहीं हैं।

यह सुनकर सेठ ने कहा कि जिनदत्त कुमार का एक ऐसा ही चित्र तैयार करो। कुछ दिनों में चित्रकार वह चित्र बनाकर ले आया। सेठ ने उसे लेकर चित्रकार को पुरस्कार दिया और उसे विदा कर दिया। अब वह चित्र को लेकर जिनदत्त के पास गया। उसने कहा- 'चंपानगरी के सेठ की कन्या तुम्हारे मन को भायी है। अस्तु तुम अपने इस चित्र को लेकर चंपानगरी जाओ और वहां के श्रेष्ठी को मेरा संदेश देना कि वह उस कन्या का विवाह मेरे पुत्र से कर दें।

जिनदत्त उस चित्र को लेकर तुरंत चंपानगरी पहुंचा और जीवदेव द्वारा दिया गया संदेश उसने श्रेष्ठी को सुना दिया। इस संदेश को सुनकर विमलचंद्र श्रेष्ठी प्रसन्नता से फूला न समाया। कुछ ही देर में अचानक वह कन्या वहां आयी। अपने पिता के हाथों में जिनदत्त का चित्र देखकर वह चकित रह गई। उस सुन्दर पुरुष के चित्र ने उसका मन मोह लिया।

विमला श्रेष्ठी ने लोक व्यवहार का ध्यान रखते हुए अपने मित्र, बंधु आदि सभी संबंधियों को इकट्ठा करके विवाह के संबंध में चर्चा की। सभी ने उसके विचार से सहमति व्यक्त की। तब उसने अपने कुछ लोगों को अनंग देश के वसंत तिलक नगर भेजा कि वे जिनदत्त

के पिता को उसकी सहमति की सूचना दें। अर्थात् वह अपनी परम सुन्दरी कन्या का विवाह जिनदत्त के साथ करने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार विमलचन्द्र के भेजे दूत जीवदेव श्रेष्ठ के पास आए। उन्होंने विमलचन्द्र का संदेश सुनाने के साथ उनका लिखा पत्र भी दिया। यह समाचार जिनदत्त को अत्यंत आनंद देने वाला था। अस्तु सेठ ने चंपानगरी प्रस्थान करने का निर्णय लिया। उसने विवाह के लिए सभी आवश्यक वस्तुएं साथ लीं। अपने बंधु बांधवों को भी साथ चलने को कहा। इस प्रकार अपने पुत्र के साथ उसने पूरी बारात सजाई चंपानगरी के लिए चल पड़ा।

चंपानगरी पहुंचने पर एक उद्यान में जीवदेव ने डेरा डाला। वहीं विवाह संबंधी समस्त कार्यों की तैयारी शुरु कर दी। फिर सेठ विमलचंद्र अपने परिवार सहित वहां आए। जिनदत्त और विमलदत्त का पाणिग्रहण संस्कार हुआ। आनंद मंगल के गीतों से पूरा वातावरण गूंज रहा था।

इस प्रकार विवाह कार्य समाप्त होने पर दोनों वर-वधू मातृ गृह गए। वहां दोनों ने कुछ रस्में की और फिर दोनों विश्राम करने चले गए।

कुछ समय तक जिनदत्त अपनी परम सुंदरी पत्नी के साथ ससुराल में ही रहा। इसके बाद उसने अपने श्वसुर से आज्ञा लेकर एक दिन अपने घर को प्रस्थान किया। उसके साथ विमलदत्ता और कुछ दासियां भी चलीं। चंपानगरी छोड़ने से पूर्व वे सब अपने बन्धु बांधवों सहित जिनालय गए। वहां पूजा के बाद विमलचंद्र ने पुत्री को हृदय से लगाकर कहा- हे पुत्री! तुम कभी किसी के साथ कठोर व्यवहार न करना, किसी से बुरे वचन न बोलना। सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करना। हे पुत्री ! तुम अपने पति के साथ उसकी छाया के समान रहना। उसकी आज्ञा का सदा पालन करना। उसके सुख-दुख को सदा अपना समझना। सदा धर्म कार्य करना, विनम्र बनकर रहना। इस प्रकार माता-पिता ने अपनी पुत्री को विदा किया।

जिनदत्त के माता-पिता ने जब सुना कि जिनदत्त और पुत्रवधू आ रहे हैं तो उसने उनका आगे बढ़कर स्वागत किया। नगर के तमाम लोग उनके साथ आए थे। अपने घर पहुंचकर जिनदत्त ने घर की रस्में पूरी कीं। और फिर वह सुख से रहने लगा। जिनदत्त ने अपना सत्मार्ग नहीं छोड़ा। वह जिन पूजा करता और अपने घर के कार्य पूरी जिम्मेदारी से करता।

एक दिन उसके सिर में अचानक पीड़ा होने लगी। वह उस पीड़ा को शांत करने के लिए अपने मित्रों के साथ कुछ मनोरंजन करने चला गया। वे सब गज एवं अश्व क्रीड़ा करते हुए कुछ दूर तक चले। वहां जिनदत्त ने देखा कि कुछ लोग जुआ खेल रहे हैं।

जिनदत्त उनके पास जाकर खड़ा हो गया और बड़ी रुचि से उस खेल को देखने लगा। कुछ देर में उन जुआरियों ने जिनदत्त को बातों में इस तरह फंसाया कि जिनदत्त भी जुआ खेलने को तैयार हो गया। किंतु उसे जुए का ज्ञान तो था नहीं, इसलिए दांव पर दांव लगाते हुए वह बड़ी भारी राशि हार गया। तब जिनदत्त ने धन लाने के लिए उन जुआरियों को अपने कोषाध्यक्ष के पास भेजा। किंतु कोषाध्यक्ष ने उन्हें डांटकर भगा दिया। जब वे खाली हाथ लौटकर आए तो जिनदत्त ने अपनी प्रियतमा के कोष से धन मंगाया। वहां से धन आ गया। उसे भी हार गया। उसने फिर कोषाध्यक्ष से धन मंगाया। किंतु इस बार भी उसने मना कर दिया। यह देखकर जिनदत्त का चेहरा उदास हो गया। उसने सोचा कि इस संसार में वे ही पुरुष श्रेष्ठ हैं जिनके पास धन हैं, वे ही श्रेष्ठ हैं जो अपने बाहुबल से धन कमाते हैं। यद्यपि पिताजी से मुझे कोई कष्ट नहीं हैं, फिर भी यह अपमान मन को दुखी करने वाला हैं। उनके धन को भोगना मेरे लिए उचित नहीं हैं। मुझे कहीं जाकर स्वयं धन कमाना चाहिए। पत्नी विमला को उसके मायके पहुंचा दूंगा और स्वयं व्यापार करने जाऊंगा।

इस प्रकार विचार करके वह घर आया। और वहां से चलने की तैयारी करने लगा। किंतु किसी तरह उसके पिता को उसके मन की बात जान ली। उसने जिनदत्त को बुलाकर कहा- हे पुत्र ! तुम वही करो जो तुम्हें प्रिय हो। मेरे धन पर तुम्हारा ही अधिकार है। मैं तो नाम मात्र के लिए इसका स्वामी हूँ। कोषाध्यक्ष को मैंने खूब फटकार दिया है। वह फिर कभी ऐसी भूल न करेगा। तुम्हें जुआरियों के साथ जुआ खेलना शोभा नहीं देता। हां, जिनालय निर्माण के लिए, ग्रंथों की रचना के लिए, भजन-कीर्तन के लिए कितना ही धन खर्च कर सकते हो।'

पिता की कही इन बातों का जिनदत्त पर कोई असर न हुआ। वह मौन बना उन्हें सुनता रहा। उसके मन की मन यही कहा कि मैंने जो सोचा हैं, वहीं करूंगा।

इसके बाद वह अपनी पत्नी के कक्ष में गया। विमलादत्ता ने कहा- हे आर्य ! मेरे पिता का संदेश आया हैं। उन्होंने मुझे कुछ दिनों के लिए बुलाया है। यदि आप आज्ञा देंगे तो ही मैं वहां जाऊंगी। इस पर जिनदत्त ने विचार किया कि यह अच्छा ही है। इसी बहाने मैं अपना काम स्वतंत्र होकर कर सकूंगा।' फिर उसने पत्नी से कहा- 'यह ठीक ही हैं। हमें चंपानगरी चलना चाहिए।

इसके बाद वह पिता के पास गया और चंपानगरी जाने की अनुमति मांगी। पिता ने सोचा कि यह ठीक ही हैं। इस बहाने इसका थोड़ा मन बहलाव हो जायगा। उसने अनुमति दे दी।

जिनदत्त शीघ्र ही अपनी पत्नी को लेकर चंपानगरी के लिए रवाना हो गया। चंपानगरी पहुंचने पर जब सेठ विमलचंद्र को ज्ञात हुआ कि उसके दामाद बेटी आए हैं तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होंने दोनों का स्वागत किया। जिनदत्त ने वहां पांच दिन तक विश्राम किया।

एक दिन जिनदत्त किसी उद्यान में पत्नी के साथ घूम रहा था कि अचानक उसने वहां वह औषधि देखी जिसको सिर के बालों में छिपा लेने से वह मनुष्य को अदृश्य बना देती थी। उसने तत्काल वह औषधि ले ली।

वह सोचने लगा कि ससुराल में अधिक दिन बिताना ठीक नहीं। लोग बाद में कहेंगे कि इसके पास कुछ काम नहीं है इसलिए ससुराल की रोटियां खा रहा हैं। वैसे भी मुझे अपने माता-पिता को नहीं त्यागना चाहिए। फिर, इस सुंदर पत्नी को तो त्यागना ही होगा। हालांकि इसे त्यागना बड़ा कष्टकर होगा। फिर भी यह कष्ट तो सहना ही पड़ेगा। इन्हीं विचारों में खोए रहने के बाद उसने वह औषधि बालों में छिपा ली और अदृश्य हो गया। इस तरह वह सभी लोगों के बीच में उस उद्यान से चला गया। उसके इस तरह अचानक चले जाने से पत्नी विमलादत्त विलाप करने लगी। वह चारों दिशाओं में उसे खोजने लगी। वह चीख-चीखकर कहने लगी- 'हे नाथ, आपकी दृष्टि ही मेरा जीवन हैं, आप ही मेरे कुल देवता हैं। आप ही मेरे प्राणनाथ हैं। आप मुझे कभी नहीं छोड़ सकते। आप कहा हैं। मेरे सामने आइए।

वह घंटों विलाप करती रही। अंत में उसकी कुछ सखियां उसे घर उसके पिता के पास ले आयीं। पिता ने धैर्य पूर्वक सब कुछ सुना। फिर उसे समझाया कि इस समय तुम जाकर जिनेन्द्र प्रभु की पूजा करो, वहीं जिनालय में रहो और दान-पूजा में मन लगाओ। जब तक तुम्हारे पति न मिले, तुम आर्यिका माताजी के संघ में रहो। वहां तुम्हारी सखियाँ और सेवक भी रहेंगे।

इस प्रकार सेठ ने अपनी पुत्री को जिनालय में रख दिया। और उसके रहने की व्यवस्था कर दी। इसके बाद सेठ ने अपने दामाद को खोजने के लिए सभी ओर अपने दूत भेजे, लेकिन वे निराश होकर लौट आए।

उधर जिनदत्त इधर-उधर भटकता हुआ दधिकर नामक नगर में पहुंचा। नगर के बाहर उसने एक सुंदर उद्यान देखा। वह चलते-चलते थक गया था। इसलिए उस उद्यान में विश्राम करने के लिए गया। वहां उसने देखा कि पेड़ पौधे, लताएं आदि सूखी पड़ी हैं। उनकी यह दुर्दशा देखकर वह सोचने लगा कि इन पौधों को रोज पानी मिलता है, फिर भी ये सूखे क्यों हैं? वह अभी अपने विचारों में ही खोया था कि उसी समय समुद्रदत्त

नामक धनाढ्य व्यापारी नगर से निकलकर वहां आया। उस उद्यान का मालिक वही था। उसने जिनदत्त कुमार को वहां देखा तो उसने विनय पूर्वक उसका परिचय पूछा।

जिनदत्त कुमार ने कहा– हे भाई, इधर-उधर भटकता हुआ यहां आ गया हूँ। जिनदत्त की बात सुनकर समुद्रदत्त समझ गया कि यह किसी कुलीन परिवार का हैं। इसलिए उसकी कुशल क्षेम पूछकर उसने कहा- हे भद्र! आपने इस उद्यान को देखा है। क्या कोई ऐसा उपाय है कि ये हरा-भरा हो सके?

जिनदत्त कुमार ने विचार करके कहा कि मैं शीघ्र ही इस उद्यान को हरा भरा बना दूंगा। यह सुनकर समुद्रदत्त प्रसन्न हुआ। फिर उसने जिनदत्त द्वारा बताई सामग्री और साधन जुटा दिए। सचमुच कुछ ही समय में जिनदत्त ने उस उद्यान की काया पलट दी। पूरा उद्यान हरा-भरा हो गया। चारों ओर फूलों की बाहर आ गयीं। लताएं फूलों से भर गयीं।

तब एक दिन समुद्रदत्त उस उद्यान में आया। उसकी मनोहारी शोभा देखकर वह अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसने अनेक वस्त्राभूषण देकर कुमार का सत्कार किया। जब उस नगरी के राजा ने आकर उद्यान को देखा तो वह भी प्रसन्न हुआ और उसने भी कुमार की प्रशंसा की। राजा ने उसे पुरस्कृत भी किया।

इसके बाद तो उद्यान के माली ने जिनदत्त को अपने ही घर में रख लिया। किंतु कुछ ही दिनों बाद जिनदत्त कुमार ने विचार किया कि मुझे इसके घर में नहीं रहना चाहिए दूसरे के धन का उपयोग करना मुझे शोभा नहीं देता। मुझे तो अपने द्वारा कमाए धन का ही उपभोग करना चाहिए।

इस प्रकार विचार करके उसने व्यापार करने का निश्चय किया। वह समुद्रदत्त के पास गया। उससे कुमार ने कहा– 'मैं व्यापार के लिए रत्नद्वीप जाना चाहता हूँ। मुझे व्यापार योग्य नौका, जहाज, बर्तन आदि सामग्री देने की कृपा करें।

समुद्रदत्त स्वयं भी व्यापार के लिए जा रहा था। अस्तु उसने कहा– 'तुम मेरे ही साथ चलो।' इस प्रकार वे दोनों अपनी तैयारी करके समुद्र के किनारे जा पहुंचे। जहाज पर बैठे और उनकी यात्रा शुरु हो गई।

आखिर कुछ ही दिनों में जहाज सिंहल द्वीप यानी रत्नों की खान वाला रत्नद्वीप के तट पर पहुंच गया। वे दोनों जहाज से उतरे। उन्होंने सिंहल द्वीप में प्रवेश किया। समुद्रदत्त के साथ आए अन्य व्यापारी इधर-उधर स्थान देखकर ठहर गए। किंतु जिनदत्त कुमार को एक वृद्धा मां ने उत्तम श्रावक समझकर अपने घर में बड़े प्रेम से ठहरा लिया।

सिंहल द्वीप की उस नगरी के राजा का नाम मेघवाहन था। उसकी रानी का नाम

विजया था। उन दोनों की एक कन्या थी- श्रीमती। वह अत्यंत रुपवती थी। किंतु किसी भयंकर रोग से पीड़ित थी। उसके साथ रात को कोई यदि सोता तो सुबह वह मरा हुआ मिलता था। इस कारण स्वयं माता-पिता ने उसे दूर कर दिया था। उन्होंने उसे एक अलग महल में रखा था। साथ ही राजा ने घोषणा करा दी थी कि जो भी इसका इलाज करेगा उंसे मैं मालामाल कर दूंगा। इसलिए सब लोग किसी वैद्य को खोजकर लाएं। लेकिन जब वैद्य न मिला तो जनता ने तय कि हर रोज बारी बारी से सभी परिवार एक-एक व्यक्ति उस राजकुमारी के पास जाय और मौत को गले लगाए।

उस दिन एक नाई उसी बुढ़िया के घर आया जहां जिनदत्त ठहरा था। उसने बुढ़िया से कहा कि आज तुम्हारी बारी है। यह सुनकर वह बुढ़िया विलाप करने लगी। जैसे मौत उसके सामने उसी क्षण वहां खड़ी हो गई थी। कुमार उस समय वहीं था। उसने बुढ़िया से रोने का कारण पूछा। बुढ़िया बोली- ' मैं पति विहीन हूं। मेरा इस संसार में कोई नहीं हैं। इस अवस्था में मैं एक पुत्र को जन्म देने वाली हूँ। उसी का मुख देखने के लिए जिन्दा हूँ। किन्तु यदि मैं राजकुमारी के साथ चली गयी तो, मेरे साथ मेरे पुत्र का भी अंत हो जायेगा।'

तब कुमार ने कहा- ' हे माता, मैं तुम्हारे सभी दुखों को नष्ट करने में समर्थ हूं। मेरे रहते हुए तुम्हें इस तरह दुखी होने की आवश्यकता नहीं है। तुम यहां सुख पूर्वक निवास करो। मैं स्वयं वहां जाऊँगा। वृद्धा ने कहा- 'बेटा! तुम भी तो मेरे बेटे के समान हो। भला कैसे कहूँ कि तुम वहां जाओ।

कुमार जिनदत्त ने विचार किया कि उस मानव जीवन का भला क्या महत्व यदि वह किसी के काम न आए। मनुष्य को तो परोपकार करना चाहिए। जिस प्रकार चंदन जल जाने पर भी सभी दिशाओं को सुगंधित करता है।

अब कुमार जिनदत्त ने स्नान कर चंदन आदि सुगंधित द्रव्यों का लेप किया। फिर सुंदर वस्त्राभूषण पहने। ताम्बूल खाया और निर्भय होकर चल दिया। जब वह मार्ग पर जा रहा था तो उसे देखने वालों की भीड़ लग गई। राजा को जब समाचार मिला कि आज एक अति सुंदर नवयुवक राजकुमारी के लिए बलिदान देने जा रहा है तो स्वयं राजा भी उसे देखने लगा। उसने जब कुमार को देखा तो उसने कहा- 'मेरे जीवन को धिक्कार है।' फिर वह राजमहल से निकल कर कुमार के सामने आया।

राजा ने कहा- हे महापुरुष ! तुम अपनी रक्षा स्वयं करो। राजकुमारी का महल भूतों का डेरा है। डरावनी जगह हैं।

किन्तु कुमार पर इसका कोई असर न पड़ा। वह राजकुमारी के महल की ओर बढ़ता

हुआ, वहां प्रवेश कर गया। वह उस महल के प्रथम तल में गया। फिर वह दूसरी मंजिल पर पहुंचा। वहां उसने पलंग पर बैठी एक सुंदर रमणी देखी जो मानो भोजन के लिए द्वार पर आंखे लगाए थी। कुमार ने उस कक्ष को चारों ओर ध्यान से देखा। फिर वह उस रमणी के पास जाकर बैठ गया। उस रमणी ने भी कुमार का स्वागत किया और पान पेश किया। इस रुपधारी पुरुष को देखकर वह बहुत प्रसन्न थी। तब कुमार से उसने उसकी कथा पूछी। वह कथा सुनाने लगा और राजकुमारी कथा सुनती रही। आखिर रात हो गयी। कथा सुनते-सुनते राजकुमारी सो गयी। जब वह गहरी नींद में सो गयी तो कुमार ने कथा सुनाना बंद कर दिया। फिर वह सोचने लगा, 'मुझे अपनी रक्षा का उपाय करना चाहिए। मुझे तुरंत सावधान हो जाना चाहिए। यह सोचकर कुमार जिनदत्त तत्काल श्मशान गया और वहां से एक मुर्दा उठा लाया। उसने मुर्दे को अपने पलंग पर सुला दिया और उसे चादर उढ़ा दी। वह पलंग रमणी यानी राजकुमारी की बगल में ही था।

अब कुमार तलवार लेकर एक खम्भे की ओट में छुप गया। उसने तलवार इतनी सावधानी से पकड़ रखी थी कि आवश्यकता पड़ने पर क्षण भर में वार कर सके।

कुछ देर में उस राजकुमारी के मुख से भयंकर, जीभ लपलपाता, आग के समान जलती आंखों वाला एक सांप निकला। वह साक्षात यमराज ही था। वह भोजन के लिए इधर-उधर घूमने लगा। वह धीरे-धीरे राजकुमारी के पलंग से नीचे उतरा और दूसरे पलंग पर जा चढ़ा। उसने जैसे ही उस शव पर फन मारा कि सावधान खड़े कुमार ने तलवार से उस पर लगातार वार किए और उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

फिर कुमार ने राजकुमारी के आभूषणों का पिटारा उठाया। सांप के टुकड़ों को उसमें बंद कर दिया। फिर शव को वहां से हटा दिया। तलवार को म्यान में रख दिया। फिर आराम से सो गया। वह राजकुमारी भी आराम से सो रही थी, क्योंकि उसका कष्ट दूर हो चुका था।

सबेरा हुआ। राजकुमारी की सुबह उसे विचित्र लग रही थी। उसका पेट और सारा शरीर फूल के समान हल्का लग रहा था। उसका मन और मस्तिष्क दोनों जैसे हल्के हो उठे थे। शरीर पतला हो गया था। उसने कुमार की ओर देखा और सोचा कि यह पुरुष कोई महान पराक्रमी व्यक्ति हैं।

कुमार वहीं बैठा राजकुमारी को देखता रहा। तब राजकुमारी ने उससे पूछा- ' हे नाथ! कृपया रात की घटना मुझे बताइए। कुमार ने कहा - 'मुझे बताने की जरूरत नहीं है। आपका शरीर स्वयं बता रहा है कि अब आपका सारा कष्ट दूर हो चुका है। फिर भी यदि तुम रात्रि की घटना सुनना चाहती हो तो सुनो ! अपने आभूषणों का पिटारा

खोलो और देखो।'

राजकुमारी ने पिटारा खोलकर देखा और जोर से चिल्लाकर भागी- 'सांप... सांप... कुमार ने उसे रोककर समझाया- 'वह मरा हुआ सांप हैं, डरो मत।

इसके बाद कुमार जिनदत्त ने उसे सारी घटना सुनाई। इसी समय राजकुमारी का एक सेवक आया। उसने कुमार को जीवित देखा तो वह उल्टे पांव भागकर राजा के पास गया। उसने राजा को समाचार सुनाया तो वह खुशी से उछल पड़ा। वह अपने मंत्रियों आदि के साथ तत्काल कुमार को देखने आया। उसने विपुल धनराशि देकर कुमार जिनदत्त को सम्मानित किया। कुमार ने भी राजा का पूरा आदर दिया।

अब राजा संतुष्ट होकर बैठा और पुत्री को ऐसे देखने लगा मानों चंद्रमा राहु के ग्रास से बच गया है। फिर राजा ने कुमार से रात की घटना पूछी। कुमार ने उन्हें रात की पूरी घटना सुनाई और फिर उस नागराज के टुकड़े दिखाए।

तब राजा ने सोचा कि यह मेरी कन्या इतनी सुंदर हैं, इसे कुमार को ही देना चाहिए। इससे बढ़कर गुणों वाला राजकुमार भला कहां मिलेगा। मैं जैसा दामाद चाहता था, वह इस समय मेरे सामने ही उपस्थित हैं। इसके उपकार का बदला इसी प्रकार चुकाया जा सकता हैं। इस प्रकार विचार करके राजा ने राजकुमारी का हाथ, कुमार को देने का निश्चय कर लिया।

शुभ मुहूर्त में राजा ने अपनी कन्या का विवाह, कुमार जिनदत्त से कर दिया। अब कुमार उस राजकुमारी के साथ राजमहल में सुख भोगने लगा।

कुछ समय बाद जिनदत्त कुमार ने राजकुमारी को जिनधर्म का महत्व और विशेषताएं समझायीं। उन्हें सुनकर राजकुमारी ने जिनधर्म स्वीकार कर लिया। कुछ समय बाद कुमार जिनदत्त को ज्ञात हुआ कि उसके साथ आए समस्त व्यापारी वापस जा रहे हैं तो उसने भी राजा से अपने देश वापस जाने की अनुमति मांगी। तब राजा ने उसके साथ अपनी पुत्री को भी विदा किया। साथ में विदाई के रूप में विपुल धन दिया।

राजा अपने सभी संबंधियों को लेकर समुद्र तट पर दामाद-बेटी को विदा करने आया। कुमार जिनदत्त और राजकुमारी दोनों जहाज पर बैठे। जहाज चल दिया।

जिनदत्त और उसकी पत्नी जहाज पर बैठे जा रहे थे। जब सार्थवाह समुद्रदत्त ने उसकी पत्नी को देखा तो वह उस पर मोहित हो गया। वह अपनी सुध-बुध भूल गया। बस यही सोचने लगा कि इस रमणी को मैं कैसे प्राप्त करूँ? उसने सोचा कि यह कुमार महान् है, वीर हैं, इसके जीते जी मैं इस नारी रत्न को कभी नहीं पा सकता। अत: पहले यह कांटा दूर करना चाहिए। उसने एक उपाय सोचा कि अगर इस कों सागर में फेंक दूं

तो मेरा काम सिद्ध हो सकता हैं।

यह सोचकर उसने एक षड्यंत्र रचा। उसने कुमार के अतिरिक्त अन्य लोगों को बुलाकर कहा कि अपना सामान शीघ्र ही समुद्र में फेंकना शुरु करो। बड़ी विपत्ति आने वाली है। उसके साथियों ने डर कर सामान फेंकना शुरु कर दिया। तभी कुमार ने यह दृश्य देखा। वह समझ न पाया कि मामला क्या है? आखिर समुद्र में ऐसा क्या है, जिसके कारण सब लोग डर रहे हैं? वह साहसी कुमार तत्काल समुद्र के जल में उतर गया। किंतु इसी बीच सार्थवाह ने तेजी से जहाज चलवा दिया और कुमार को वहीं छोड़ दिया। कुमार अथाह जल में तैरने लगा। जब राजकुमारी को यह ज्ञात हुआ कि कुमार अथाह जल में छूट गया है तो वह विलाप करने लगी। उसकी समझ में न आया कि मैं क्या करुं? तभी सार्थवाह वहां आया। उसने कहा- हे चन्द्रमुखी, तुम शोक मत करो, तुम्हारी समस्त इच्छाएं मैं पूरी करुंगा। भला मेरे रहते तुम्हें क्या कष्ट हो सकता है? कुमार के न होने से तुम्हें कोई कमी नहीं महसूस होगी। धन, दौलत, आभूषण, कीमती वस्त्र आदि सब कुछ मैं दूंगा। अब तुम मेरी गृहणी बनकर रहना। सच पूछो तो अब तुम जिनदत्त को भूल जाओ, क्योंकि उसे तुम कभी नहीं पा सकोगी। तुम्हें पाने के लिए यह सब नाटक किया है। इसलिए तुम निशिचिंत होकर, मेरे द्वारा दिए जाने वाले सुख का भोग करो।'

राजकुमारी ने सार्थवाह की दुष्टता भरी बातें सुनीं तो वह परेशान हो उठी। उसने समझ लिया कि इस दुष्ट ने क्यों यह खेल खेला है। किन्तु मैं इसकी इच्छापूर्ति कभी न होने दूंगी। इसने मेरे पति को मुझ से दूर किया है- इसको तो देखना तक मेरे लिए पाप है। इस अथाह सागर में मेरे पति का जीवन कैसे सुरक्षित रह पाएगा? समुद्र के सैकड़ों भयानक जल जंतुओं ने उन्हें मार डाला होगा। इसलिए मेरा जीना भी व्यर्थ है। यही अच्छा होगा कि तलवार से मैं भी अपनी जीवन लीला समाप्त कर दूं। किंतु तभी उसके मन ने कहा- ' नहीं, यह ठीक न होगा।' यह सोचकर उसे ध्यान आया कि पति देव ने कहा था- जिनधर्म में आत्म हत्या पाप है। अत: निराश नहीं होना चाहिए।

अब राजकुमारी सोचने लगी कि इस समय मैं एकदम अकेली हूँ। यह राक्षस मेरा धर्म नष्ट करना चाहता है। इससे मैं अपना बचाव कैसे करुं? भला इस समय कौन मेरी सहायता कर सकता है? तब उसने सोचा कि इस समय थोड़ी चतुराई से काम लेना चाहिए। इसे यदि मैं आश्वासन देकर भुलावे में फंसा दूं तो यह मेरा तत्काल कोई अहित नहीं करेगा। संभव है तब तक मेरे पति देव यहां आ जायें। फिर भी यदि वो न आए तो मैं तपोवन की शरण ग्रहण करुंगी।

इस प्रकार सोचकर राजकुमारी ने अपने मन को संतुलित किया। तभी सार्थवाह पुन:

वहां आया। राजकुमारी ने उसे समझाते हुए कहा- 'आप मेरे ससुर के समान हैं। मेरे पति ने मेरे सामने आपको पिता जैसा आदर दिया था। इसलिए जो मेरे जैसा है, उसके साथ रमण करने में मुझे घृणा होती है। आपको अपनी सीमा नहीं लांघनी चाहिए। क्या समुद्र कभी अपनी मर्यादा और सीमा का उल्लंघन करता हैं? आप श्रेष्ठ कुल के हैं। यह घृणित कार्य करके अपने कुल को क्यों कलंकित करते हैं?

यह सुनकर सार्थवाह बोला- 'मैं तुम्हारे प्रेम में अंधा हो रहा हूँ। तुम्हारा प्रेम रस ही मेरा जीवन है। तुम जो कह रही हो, वह सत्य है, किंतु यदि मैं तुम्हें न पा सका तो मैं अपने प्राणों को तुम्हारे सामने त्याग दूंगा।'

सार्थवाह की इस तरह की बातें सुनकर राजकुमारी बोली- 'यदि तुम यही चाहते हो तो मेरी बात ध्यान से सुनो! मैं छह महीने अपने पति की प्रतीक्षा करूंगी। यदि इस बीच में वे न आए तो अवधि समाप्त होने पर वही करुंगी जो तुम कहोगे।

यह सुनकर सार्थवाह ने गहरी सांस ली और बोला- 'ठीक है। ऐसा ही करो। लेकिन अवधि समाप्त होने पर अपनी बात से हटना नहीं। और इस प्रकार सार्थवाह एक-एक दिन गिनने लगा।

धीरे-धीरे जहाज समुद्र तट पर आ गया। राजकुमारी ने अपने साथ आए दास-दासियों से कहा कि मैं तट पर स्थित वृक्षों के समूह तले निवास करती हूँ। यदि सार्थवाह पूछे तो कहना कि मैं लताओं में रहूँगी। उधर सार्थवाह सेठ भी भेंट लेकर उस नगरी के राजा के पास चला गया।

राजकुमारी ने अपने सेवकों से कहा कि तुम सब यहां आराम करो। मैं स्नान करने जा रही हूँ। वे वहीं बैठे गए, राजकुमारी स्नान के बहाने निकलकर चम्पापुरी नगरी में चली गई।

चंपानगरी में राजकुमारी की भेंट प्रधान रक्षक से हुई। वह अत्यंत सज्जन और धर्मात्मा पुरुष था। राजकुमारी ने उसे सविस्तार सारी बात बता दी। प्रधान ने कहा- 'तुम चिंता मत करो। तुम मेरी पुत्री हो। निर्भय होकर नगरी में रहो।

राजकुमारी ने आगे जाकर एक जिनालय देखा। जब वह वहां पहुंची तो उसे विमलमती और उसके दास-दासियां मिले। विमलमती ने राजकुमारी से उसके बारे में पूछा। तब राजकुमारी ने अपनी करुण कथा उसे भी सुनायी। विमलमती ने राजकुमारी को समझाया कि दुख न करो और जिन भक्ति में ध्यान लगाओ।

एक दिन सेठ विमलचंद्र जब जिनालय में आए तो उनका परिचय राजकुमार से हुआ। सेठ विमल के हृदय में भी उसके प्रति दुख और करुणा के भाव जागे। उसने उसकी बातों

से समझ लिया कि हो न हो, इसका भी पति वहीं हैं जो मेरी बेटी का है। तब सेठ विमल ने उन दोनों को समझाया कि तुम दोनों ही जिन पूजा करो- तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूरा होगा।

उधर जब जिनदत्त को पानी में तैरेते-उतरते छोड़कर जहाज चला गया तो वह पानी में तैरते हुए सोचने लगा कि इस समय साहस से काम लेना चाहिए। किंतु वहां कोई सहारा न था। तभी अचानक लकड़ी का एक लट्ठा मिला जिसे पकड़कर जिनदत्त तैरने लगा। आखिर तैरते हुए जब वह तट पर पहुंचा तो वहां दो पुरुष उसके सामने आकर खड़े हो गए।

एक ने कहा- 'अरे कीडे! तू यह क्या कर रहा था? हमारे सामने तू इस समुद्र सागर को रौंद रहा हैं?

दूसरा बोला- ' मेरे सामने यहां इंद्र भी क्रीड़ा करने का साहस नहीं कर सकता। फिर भला तूने कैसे साहस किया? तू अपनी जान से हाथ धो बैठेगा।

पहला पुरुष बोला- 'अरे मूर्ख ! क्या तुझे घर से निकाला गया है? या पागल हो गए हो? क्या मेरा नाम नहीं सुना है जो इस तरह निर्भय होकर यहां समुद्र में तैर रहा था?

जिनदत्त ने यह सब सुनकर अपने को संभाला। फिर दाहिने हाथ से कटार निकाल ली और बाएं हाथ में वहीं लकड़ी का डंडा उठा लिया। वह बोला- 'अरे तुम लोग क्या दूर से ही गाल बजा रहे हो, आओ मेरे पास आओ ! अभी मजा चखाता हूँ।

जिनदत्त की ललकार सुनकर उन विद्याधरों ने समझ लिया कि यह कोई पराक्रमी व्यक्ति है। तब एक ने शांत होकर कहा- हे स्वामी ! आप नाराज न हों। हमने तो केवल आपकी परीक्षा ली थी। अब आप हमारी बात ध्यान से सुनें। विजयार्द्ध पर्वत के दक्षिण में मंडन स्वरूप राजधानी है। वहां रथनू पुर नामक नगर है। उसका राजा अशोक श्री। उसकी रानी का नाम विजया है। उनकी श्रृंगारमती नाम की एक सुंदर कन्या है। वह इस समय विवाह योग्य हो गई हैं। उसकी सुंदरता का क्या वर्णन करूं? वह किसी विद्याधर कुमार विद्याधर राजा से विवाह नहीं करना चाहती। उसके पिता को ज्योतिषियों ने बताया है कि जो पुरुष अपनी भुजाओं से सागर पार करेगा, वही आपकी कन्या से विवाह करेगा। इसलिए हमारे विद्याधर राजा ने हमें यहां भेजा है कि आपको हम वहां ले चलें। हम दोनों ही विद्याधर पुत्र हैं।

इसके बाद वे दोनों विद्याधर, कुमार जिनदत्त को राजा के पास ले गये। जिनदत्त का रूप सौंदर्य देखकर राजा प्रसन्न हो उठा। फिर उसने विवाह की तैयारी की। शुभ लग्न में राजा ने अपनी राजकुमारी श्रृंगारमती का विवाह जिनदत्त के साथ कर दिया। इसके

बाद जिनदत्त ने राजा से आज्ञा लेकर अपने घर के लिए प्रस्थान किया, वे दोनों एक विमान पर बैठे और आकाशा मार्ग से चल कर चंपानगरी पहुंचे। उस समय संध्या हो गई थी। उन्होंने एक उद्यान में डेरा डाला। जिनदत्त ने राजकुमारी से कहा- 'मैं सोता हूँ- तुम जागती रहना।' कुछ देर बाद जिनदत्त सोकर उठा और राजकुमारी से बोला- 'अब तुम सो जाओ। मैं तुम्हारे पास यहीं बैठा हूँ।

राजकुमारी श्रृंगारमती सो गई। तब जिनदत्त ने अपनी विद्या से अपने को अदृश्य बनाया और उद्यान से निकल पड़ा।

सवेरा होने पर श्रृंगारमती जागी। उसने देखा कि वहां न विमान हैं, न ही उसका पति। उसने इधर-उधर बहुत खोजा। जब निराश हो गयी तो वह रोने लगी। वह पुकार-पुकार कर कहने लगी- हे स्वामी ! मुझे अकेला छोड़कर इस समय आप कहां चले गए। आपका वियोग मैं एक क्षण भी नहीं सह सकती। मुझसे क्या अपराध हुआ है? मुझे यह मुसीबत क्यों दी है आपने?

श्रृंगारमती की रोने की आवाज जिनालय में भी पहुंची। उस जिनालय में जिनदत्त द्वारा छोड़ी दो पूर्व पत्नियाँ थीं। उन्होंने इस करुण-विलाप को सुना तो वे शीघ्र ही उस उद्यान में पहुंची। उन्होंने श्रृंगारमती से रोने का कारण पूछा। तब उसने सारी कथा सुना दी। तब उन्होंने उसके पति को रूप आकर पूछा। वह विवरण सुनकर वे समझ गयीं कि अवश्य ही यह काम भी जिनदत्त अर्थात हमारे प्राणनाथ का है। उन्होंने श्रृंगारमती को समझाया- 'तुम दुखी मत हो। हम तो तुम्हारे जैसे ही दुख से पीड़ित हैं। हम तुम्हारे साथ हैं। तुम शांत हो जाओ।

इस प्रकार वे श्रृंगारमती को जिनालय में ले आयीं। अब तीनों ही प्रेम पूर्वक जिन पूजा में जुट गयीं।

इधर जिनदत्त उस उद्यान से निकलकर अपने को बौने का रूप बना लिया और चंपानगरी के अंदर गया। जिनदत्त तो सभी कलाओं में निपुण था। संगीत में भी वह कुशल था। इसलिए वह अपने सुरीले गीतों गानों से जनता को लुभाने लगा। उसने लोगों को अपना नाम गंधर्वदत्त बताया।

गंधर्वदत्त के मुधर संगीत की चर्चा चारों ओर फैल गयी। सभी उसके गानों को बहुत प्रशंसा करते। जब राजा जीवक को उसके संगीत की जानकारी मिली तो वह भी सुनने के लिए उत्सुक हुआ। उसने अपने दूत भेजकर गंधर्वदत्त को दरबार में बुलाया। फिर उसका संगीत सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। राजा ने कहा- मैं तुम्हारी आजीविका की व्यवस्था कर देता हूँ। अब तुम्हें इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं है। तुम यही रहो।

कुछ ही दिनों में गंधर्वदत्त अपने मधुर एवं विनोदी स्वभाव के कारण सबका प्रिय हो गया।

एक दिन किसी ने राजा से कहा- हे स्वामी, यहां के जिनालय में तीन अतिसुंदर सुव्रता नारियां हैं। वे वहां रहकर पूजा पाठ करती हैं। किंतु न किसी से बोलती हैं, न हंसती हैं, अपने ध्यान में ही सदा लीन रहती हैं।

यह समाचार सुनकर राजा को भी उत्सुकता हुई। राजा ने गंधर्वदत्त से कहा- 'हे बौने संगीतज्ञ, क्या तुम उन नारियों को हंसा सकते हो?'

जी हां! मैं अवश्य ही उन्हें हंसा दूंगा। गंधर्वदत्त ने उत्तर दिया। 'मै मनुष्य क्या, पेड़ पौधौं को भी हंसा सकता हूँ?

राजा यह सुनकर प्रसन्न हुआ कि मेरे दरबार में ऐसा गुणी व्यक्ति है। तब उसने अपने कुछ सामंतों के साथ गंधर्वदत्त को उस जिनालय में भेज दिया। फिर राजा भी पीछे-पीछे छिप कर वहां पहुंच गया।

गंधर्वदत्त ने जिनालय में पहुंचकर पहले पूजा स्तुति की। फिर उन तीनों पति विहीन नारियों के पास आया। उन्हें अपने सुमधुर गीत सुनाए।

तब उन नारियों ने कहा- 'हे भद्र ! कृपया कोई ऐसी कथा सुनाइए जिसमें कौतूहल हो।'

जिनदत्त ने कहा- ' ठीक है! मैं ऐसी ही कथा सुनाता हूँ।

इसके बाद जिनदत्त ने अपनी ही कथा का वर्णन आरंभ किया। पहले उसने बताया कि कैसे उसने विमला का त्याग किया और अदृश्य होकर चला गया। यह कथा सुनते ही विमला ने पूछा- 'आपने यह कथा कहां और किससे सुनी? यह तो बड़ी अदभुत कथा है।'

लेकिन तभी सामंतों ने कहा - ' गंधर्वदत्त ! अब हमें राजदरबार में चलना चाहिए। दरबार का समय हो गया है। आगे की कथा कल आकर सुनाना। इस प्रकार गंधर्वदत्त उस दिन वहां से चला आया।

दूसरे दिन कुमार जिनदत्त, अपने उसी बौने रुप में फिर से जिनालय में पधारे। पहले दिन की भांति आज भी सामंत आदि साथ आए थे।

गंधर्वदत्त ने आज की कथा में बताया कि कैसे उसने सिंहल द्वीप के लिए प्रस्थान किया, कैसे नागराज को मारा और फिर किस तरह समुद्र में गिर पड़ा। इसके बाद वह चुप हो गया।

'आप जानती हैं कि मैं राजाज्ञा से बंधा हुआ हूँ। राजमहल में जाने का समय हो गया हैं। मुझे जाना है। शेष कथा कल सुनाऊंगा।' यह कहकर गंधर्वदत्त वहां से चला गया।

गंधर्वदत्त के चले जाने के बाद दोनों पत्नियाँ यानी विमला और रमणी-विचार करने लगीं कि यह व्यक्ति कौन है? इसे यह कथा कैसे मालूम हुई? किंतु वे कोई समाधान न प्राप्त कर सकीं।

तीसरे दिन गंधर्वदत्त फिर वहां आया। आज उसने तीसरी पत्नी की कथा सुनाई कि कैसे यह विद्याधर के नगर में पहुंचा और फिर कैसे चंपानगरी के उद्यान में उस पत्नी को भी छोड़कर चला गया। इतनी कथा सुनाने के बाद वह जैसे ही जाने को हुआ कि वह तीसरी पत्नी बोली- ' हे भद्र! यह कथा अधूरी छोड़कर न जाना। इसके बाद क्या हुआ। यह भी बताकर जाइए।

'ठीक है! यदि आप आगे की कथा सुनना चाहती हैं, तो जरुर सुनाऊंगा- किंतु आज का समय बीत चुका है। कल प्रात: काल यह संभव होगा। तब तक प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।' इतना कहकर वह वहां से चला गया।

गंधर्वदत्त के जाने के बाद तीनों पत्नियों ने विचार किया कि इस व्यक्ति के माध्यम से हमें अपना पति अवश्य प्राप्त हो सकता है। इसलिए उनके चेहरे पर प्रसन्नता आ गयी।

राजा ने जब देखा कि गंधर्वदत्त ने उन तीनों नारियों को प्रसन्न बना दिया है तो उसने सम्मान देकर उसे पुरस्कृत किया।

अगले दिन प्रात: काल अचानक चंपानगरी में कोलाहल मच गया। मारो, भागो, बचाओ आदि का शोर होने लगा। चारों तरफ भगदड़ मच गयी। राजा ने शोर सुना तो पूछा कि क्या हुआ है? तब किसी ने आकर सूचना दी कि ' मलय सुंदर' नामक हाथी ने जंजीर तोड़ डाली है। और भाग निकला है। उसी के डर से लोग भाग रहे हैं। वह हाथी नगरी में इधर-उधर भाग रहा है। उसके सामने जो भी आता है- चाहे मनुष्य हो, जानवर हो, पेड़ हो या घर- उसे वह रौंद डालता है। इस प्रकार वह हाथी चारों ओर विनाश कर रहा है। किसी से भी न तो वह रुक रहा है- न ही संभल रहा है।

राजा ने यह सब सुनकर अपने परम वीर सामंतों को भेजा कि वे हाथी को वश में कर लें। वे सामंत-वीरों में श्रेष्ठतम थे। इसलिए राजा को इस कार्य में कोई शंका न थी। वे वीर सामंत शीघ्र ही हाथी के सामने आए। किंतु हाथी का आकार और उसका क्रोध देखकर सब सिमट गए। उनका सारा साहस समाप्त हो गया।

हाथी के पागलपन से सारी प्रजा परेशान हो उठी। उस हाथी का उत्पात तीन दिनों तक जारी रहा। बहुत उपाय किए गए। पर वह हाथी शांत न हुआ। तब राजा ने परेशान होकर घोषणा करा दी कि जो कोई इस हाथी को वश में करेगा, उस महावीर के साथ मैं अपनी कन्या का विवाह करुंगा और बहुत सी सम्पत्ति दान में दूंगा।

जब वामन वेशधारी जिनदत्त कुमार ने यह घोषण सुनी तो उन्होंने शीघ्र ही उस भयंकर हाथी को वश में करने का संकल्प लिया। वह हाथी की खोज में निकल पड़े।

जैसे ही दोनों आमने-सामने हुए कि लोग दम साधकर खड़े हो गए। हाथी क्रोध से कुमार की ओर झपटा। कुमार ने हाथी पर वार शुरु किए। कभी सामने से, कभी बगल से, कभी पीछे से, कभी नीचे से, अंकुश, साकल आदि से वार करने लगे, इस प्रकार के लगातार वार से हाथी परेशान हो गया। वह चारों ओर से घायल होकर शांत हुआ। तब कुमार ने उसकी सूंड पकड़कर उसकी सवारी की और उसे इधर-उधर घुमाने लगा।

इस प्रकार अपने प्राक्रम से पागल हाथी को वश में कर लेने वाले कुमार की जय-जयकार होने लगी। कुमार को उसी हाथी पर बिठाकर राजमहल लाया गया। हाथी को यथास्थान बांध दिया गया। अब कुमार को राजदरबार में बुलाकर राजा ने उचित स्थान दिया।

अब राजा को अपना वचन पूरा करना था, अर्थात् अपनी कन्या से कुमार का विवाह करना था। इसलिए राजा ने मंत्रियों से सलाह की कि जिस व्यक्ति के कुल आदि के बारे में कुछ भी ज्ञान न हो, उसे कन्या कैसे दी जाये?

इस पर मंत्रियों ने कहा- ' राजन् ! आपकी बात सही है। किंतु इसका मुख मंडल, इसका शरीर यह सूचित करता है कि यह उच्च कुलीन है। इस संबंध में आपको कोई संदेह नहीं करना चाहिए। आप नि:संकोच इसे कन्या प्रदान कीजिए। आपकी कन्या के लिए इससे सुंदर वर कहां मिलेगा?'

राजा को फिर भी मौन देखकर मंत्रियों ने कहा- ' हे स्वामी! यदि आपका मन संतुष्ट नहीं है तो इन्हीं कुमार से पूछ लीजिए कि उनका परिचय क्या है?

तब राजा ने कुमार से कहा- ' हे परमवीर ! यद्यपि आपके शौर्य, कौशल, धैर्य, पराक्रम आदि पर मुझे कोई संदेह नहीं है, फिर भी आप अपना परिचय देकर हमारे मन को संतुष्ट कीजिए।

राजा की बात सुनकर कुमार ने कहा- ' हे राजन् ! आप सुनें ! वंसतपुर नगर में जीवदेव नामक एक श्रेष्ठि है। मैं उसी श्रेष्ठी का पुत्र हूँ। मेरा नाम- जिनदत्त कुमार। आपके नगर के श्रेष्ठी विमलचन्द्र की पुत्री विमला मेरी पहली पत्नी है। द्वितीय पत्नी सिंहल द्वीप के नरेश की पुत्री है और तृतीय पत्नी चक्रवर्ती विद्याधर राजा की पुत्री है। मेरी वे तीनों पत्नीयां इस समय जिनालय में उपस्थित हैं। वे मेरी प्रतीक्षा कर रहीं हैं। इस समय मैंने विद्या-बल से अपना रुप परिवर्तित कर रखा है। यह केवल खेल है।

यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने एक दासी भेजकर जिनालय से कुमार की

तीनों पत्नियों को बुलाया। उनके आने पर राजा ने उन्हें आदर सहित आसन दिया।

राजा ने उनसे कहा- ' हे देवियों! यह महापुरुष कहता है कि आप तीनों इसकी पत्नियां हैं। क्या यह सत्य है या झूठ?

राजा का प्रश्न सुनकर वे तीनों आपस में एक दूसरे को देखने लगीं कि क्या उत्तर दें? अंत में उन्होंने कहा- 'महाराज ! यह व्यक्ति हमारा पति नहीं, केवल हमारे पतिदेव के साथ हुई घटनाओं को जानने वाला है। यह जो कथा जानता है, वह सच हैं, किंतु यह हमारा पति नहीं है।'

यह सुनकर कुमान ने अपना मुख कपड़े से ढक लिया और हंसने लगा। हंसते-हंसते उसने रुप बदल लिया।

राजा ने फिर पूछा- ' हे देवियों! आप फिर से सोचिए! आप जो कुछ कह रही हैं, वह क्या सत्य है?

देवियों ने कहा- 'महाराज ! हमें कोई शंका नहीं है। इस व्यक्ति में और हमारे पति में कोई समानता नहीं है। फिर भला यह हमारा पति कैसे हो सकता है?'

अब कुमार ने अपना वामन-रुप छोड़कर पहले जैसा आकार कर लिया। किंतु गोरे रंग की जगह काला रुप रख लिया। तभी उन पत्नियों ने उसे देखा। वे आश्चर्य में पड़ गयीं। अब वे बोली- महाराज ! यह व्यक्ति लगता तो है हमारा पति है, पर रंग से वैसा नहीं हैं।'

यह सुनकर कुमार ने अपना स्वर्ण जैसा दमकता वास्तविक रंग धारण कर लिया। यह परिवर्तन देखकर वे तीनों स्तंभित रह गयीं। उनका हृदय उल्लास से भर गया। रोम-रोम पुलकित हो उठा। वे तत्काल उठीं और अपने पति के चरणों में लिपट गयीं।

यह दृश्य देखकर राजा को विश्वास हो गया कि इनका पति यही है। तब राजा ने आभूषण, वस्त्रादि देकर कुमार का सम्मान किया।

शीघ्र ही सारे नगर में समाचार फैल गया कि जिनदत्त कुमार आ गए हैं। सेठ विमल ने सुना तो वह भी दौड़ा आया और उसने कुमार को गोद में भर लिया। कुमार ने भी उसे विनम्र होकर प्रणाम किया।

फिर कुशल समाचार पूछकर सेठ ने राजा से निवेदन किया कि हे देव! कुमार को मेरे घर जाने की आज्ञा दें।

राजा ने कहा- 'इस प्रराक्रमी का घर तो यही हैं। हालांकि तुम ठीक कह रहे हो, फिर भी हमारी इच्छा है कि ये राजमहल में ही रहें।

तब कुमार ने राजा से विनय की- 'इस समय सेठ जी का कहना उचित है। मैं भी

जाना चाहता हूँ। कुमार का आग्रह सुनकर राजा ने अनुमति दे दी।

इस प्रकार जिनदत्त, अपनी पत्नियों और श्रेष्ठी के साथ घर आए। चारों ओर आनंद का वातावरण था। श्रेष्ठी ने कुमार का खूब सत्कार किया।

कुमार जिनदत्त के आगमन पर श्रेष्ठि ने विशाल उत्सव आयोजित किया। नगर के नर-नारी उस उत्सव में सम्मिलित हुए। कुमार ने सबको अपनी कथा सुनाई। खूब नृत्य-गीत हुए। गरीबों को दान दिये गए और इस प्रकार वह उत्सव समाप्त हो गया।

इसके कुछ समय बाद राजा ने शुभ मुहूर्त देखकर, कुमार जिनदत्त के साथ अपनी कन्या का विवाह कर, अपना वचन पूरा किया। इस प्रकार सभी प्रकार से सुख पाकर कुमार जिनदत्त अपने दिन शांतिपूर्वक बिताने लगे।

कुछ समय बाद कुमार जिनदत्त को अपने माता-पिता की याद सताने लगी। तब उसने एक दूत के द्वारा अपना कुशल समाचार उनके पास भेजा। इस समाचार से कुमार के माता-पिता के आनंद का ठिकाना न रहा। तब पिता ने जिनदत्त को लाने के लिए अपने संबंधियों को भेजा।

उन्होंने कुमार से विनय की कि अब आप देर न करें और यहां से चलें। आपके माता-पिता आपकी राह देख रहे हैं। सभी बंधु-बांधव आपके दर्शनों हेतू व्याकुल हैं।

इस प्रकार उनकी प्रार्थना सुनकर कुमार जिनदत्त घर जाने के लिए तैयार हो गए। फिर राजा, श्रेष्ठि आदि सबसे अनुमति लेकर कुमार अपनी पत्नियों और धन-धान्य सहित घर के लिए चल दिए।

उधर पिता ने अपने पुत्र और पुत्र वधुओं के स्वागत की तैयारी कर ली थी। अस्तु उनके पहुंचने पर मंगलगान के साथ खूब स्वागत हुआ। और इस प्रकार कुमार अपने घर वापस आ गए।

कुमार की चारों पत्नियों ने सास-ससुर के चरण छुए। उनकी सुंदरता देखकर सभी आश्चर्य चकित थे।

इसके बाद जिनदत्त अपनी पत्नियों और माता-पिता तथा बंधु-बांधवों सहित, अपने नगर के जिन मंदिर में गए। वहां भक्तिपूर्वक पूजन किया। फिर वहां वीतरागी मुनियों के अमृत-वचन सुनें।

घर आकर दीन, अनाथ, गरीबों को दान दिया। इस प्रकार वह सुख से रहने लगे।

कुमार जिनदत्त की वीरता, पराक्रम, दानशीलता, धर्मपरायणता आदि चर्चा चारों दिशाओं में गूंजने लगी थी। वह जहां सुख पूर्वक बिता रहे थे, वहीं पूजा, भक्ति, व्रत पालन आदि में कोई कमी नहीं कर रहे थे।

कुछ समय बाद उनकी प्रथम पत्नी विमलामती से दो सुंदर पुत्र उत्पन्न हुए। प्रथम का नाम रख गया- सुदत्त और दूसरे का जयदत्त। इसके बाद इनके एक बहन भी हुई, जिसका नाम रखा गया- 'वंसत लेखा'। यह पुत्री दूसरी पत्नी से हुई थी। इसका एक भाई भी जन्मा- 'सुप्रभ'। तीसरी पत्नी ने तीन पुत्रों को जन्म दिया- सुकेतु, जयकेतु और गरुड़केतु। इसने एक कन्या को भी जन्म दिया- विजयामती'। चौथी रानी ने सुमित्र, जयमित्र, और वसुमित्र नामक तीन पुत्रों और 'प्रभावती' नामक कन्या को जन्म दिया।

इस प्रकार एक बार पुनः इन संतानों के जन्म पर उत्सव मनाया गया तथा उनका नामकरण आदि हुआ। यद्यपि जिसके पास विपुल धन होता है वह ऐसे अवसरों पर और भोग विलास के लिए खर्च करते है। फिर भी जिनदत्त सावधान था। वह धन को यूं ही नहीं खर्च कर रहा था।

एक दिन जिनदत्त राजसभा में बैठा था। तभी वहां वनपाल आया। उसने बताया कि श्रृंगार तिलक नामक उद्यान में आज प्रातः चार ज्ञानधारी मुनिराज पधारे हैं। उनका नाम समाधि गुप्त है। उनके आगमन से उद्यान के वृक्ष फूल तथा फलों से लद गए हैं। चारों ओर आनंदमय वातावरण हो गया है।

जिनदत्त ने मुनिराज के आगमन का समाचार सुना तो तुरंत राजसभा से उठा और उनके दर्शनों के लिए प्रस्थान की तैयारी करने लगा। उसने अपने सभी मित्रों और बंधु-बांधवों को एक स्थान पर एकत्र किया और वाहनों पर सवार होकर श्रृंगार-तिलक नामक उद्यान की ओर चल दिया।

जब उद्यान दूर से दिखलाई देने लगा तो जिनदत्त वाहन से उतरकर पैदल चलने लगा। उद्यान में पहुंचकर उसने अशोक वृक्ष के नीचे बैठे मुनिराज को देखा। वह दोनों हाथ जोड़कर उनके निकट पहुंचा। उन्हें तीन प्रदक्षिणा दी। फिर नमस्कार करके उनके पास बैठ गया।

मुनिराज का आशीर्वाद प्राप्त होने पर जिनदत्त ने कहा- ' हे जगत नायक! जब तक आपके वचन रूपी सुर्य की किरणें प्राप्त नहीं होतीं, तब तक जीव मोह रूपी अंधकार में डूबा रहता है। हे स्वामी! आप, भव्य जीवों का पथ-प्रदर्शन कर उन्हें कुमार्ग से हटाकर, सन्मार्ग की ओर अर्थात् मोक्ष का मार्ग दिखाते हैं। हे गुरु आपके प्रसाद से मैं अपने पूर्वभव को सुनना चाहता हूँ। हे गुरुवर! मैं जानना चाहता हूँ कि मुझे किस कर्म के उदय से यह समस्त सुख, साधन, संपदा आदि प्राप्त हुई है? हे देव! इन चारों सुन्दरियों को मैं पत्नी रूप में किस कारण प्राप्त कर सका हूँ।

इस प्रकार जिनदत्त ने जब अपने प्रश्न पूछे तो मुनिराज ने शांत भाव से कहा- हे

भद्र! यदि तुम सुनना ही चाहते हो तो सावधान हो जाओ और मेरी बातों को एकाग्र होकर सुनो। यह जीव इन्द्रिय जन्य अर्थात् इंद्रियों से प्राप्त होने वाले सुख को मानता है। किन्तु वह वास्तव में सुख नहीं है। बल्कि वह दुख ही है। इसलिए अब मैं तुम्हारे पूर्व भव को बताता हूँ, क्योंकि उससे ही तुम्हारा हित शीघ्र संभव है।

मुनिराज ने आगे कहा- ' जंबूद्वीप में भरत क्षेत्र नामक एक रमणीक क्षेत्र है। इसमें अवन्ति नामक एक अत्यंत सुखी व संपन्न देश है। इस देश में उज्जयिनी नामक एक सुंदर नगरी है। इस नगरी की शोभा तो स्वर्ग से भी बढ़कर है। वहां धर्म विक्रम नामक एक राजा था। वह बड़ा ही यशस्वी था। उसके शत्रु सदा पराजित अनुभव करते थे। इस राजा की कमल के समान कांति वाली पद्मश्री नामक महारानी थी। वह अत्यंत विदुषी और गुणवान थी।

उसी उज्जायिनी नगरी में धनदेव नामक एक सेठ था। वह समुद्र के समान गंभीर और गुणों की खान था। उसकी सेठानी का नाम यशोमति था। वह गृह कार्य में बड़ी कुशल थी। उन्हीं दोनों के गर्भ से तुम उत्पन्न हुए। तुम्हारे पिता ने यथोचित उत्सव किया। तब तुम्हारा नाम 'शिवदेव' रखा गया।

पूर्व पाप कर्म के उदय से, तुम जैसे-जैसे बड़े हुए, तुम्हारे घर की सम्मति भी वैसे-वैसे नष्ट होती गयी।

एक दिन तुम्हारे पिता व्यापार के लिए बाजार गए। अचानक उसी समय आकाश से बिजली गिरी और तुम्हारे पिता वहीं मर गए। शोकाकुल परिवार ने उनकी अन्त्येष्टि की। तुम्हारी मां का बुरा हाल था। वह रो-रो कर यही कह रही थी। कि अब इस सुंदर सुकुमार बालक का क्या होगा?

फिर धीरे-धीरे जब उन्होंने धैर्य धारण किया तो गृह कार्य संभाले। उस समय तुम दीन-हीन थे और उसी हाल में बड़े होने लगे। फिर तुम युवक हुए। तुम्हारा विवाह हुआ। तुम व्यापार के लिए जाने लगे। जो कुछ कमाते उसी से परिवार चलता।

एक दिन तुम अपने परिवार सहित प्रातः काल व्यापार के लिए निकले। जब काफी दूर निकल आए तो एक बड़े वट-वृक्ष के नीचे पहुंचे। वहां पर एक योगिराज बैठे थे। वह त्रिकालदर्शी थे। उन्हें गर्मी, वर्षा, सर्दी आदि से कोई कष्ट न होता था। उनका नाम था श्रीविमल मुनीन्द्र। उन्हें देखते ही शिवदेव यानी तुम उनके चरणों में गिर पड़े। तुम सोचने लगे कि संसार में दो ही लोग सुखी हैं- एक पद्म छत्रधारी चक्री और दूसरे मुनीश्वर। इसके बाद शिवदेव वहां से अपने व्यापार के स्थान पर चला गया। किंतु अगले दिन से उसने नित्य नियम बना लिया। वह प्रतिदिन आकर मुनिराज के दर्शन करता।

एक मास पूर्ण होने पर शिवदेव ने विचार किया कि आज न जाने किस भाग्यशाली पुण्यवान के घर ये श्री मुनि के चरणों से पवित्र होगें। मुनिदान से, आहार दान से समस्त भोग सुख अनायास ही प्राप्ति हो जाते है। इस प्रकार विचार कर शिवदेव ने स्नान किया, स्वच्छ पकड़े पहने और अपने द्वार पर आकर खड़ा हो गया।

उधर मुनिराज चले आ रहे थे। अनेक गृहों को छोड़ते हुए। धीरे-धीरे चले आ रहे मुनिराज को देखकर शिवदेव बहुत प्रसन्न हुआ। तभी वह मुनिराज उसके घर के सामने आ पहुंचे। शिवदेव ने आगे बढ़कर उनका पड़गाहन बड़ी श्रद्धा से किया। उन्हें गृहप्रवेश कराया। उनके पावन-चरणों का प्रक्षालन किया। फिर गांधोदक मस्तक पर चढ़ाया। अष्ट-द्रव्य से पूजन किया। फिर प्रासुक निर्दोष आहार दिया। मुनिराज ने भी समताभाव से आहार किया। उसी समय सूरदेव, यशोदेव और नन्ददत्त वणिकों की पुत्रियाँ- पद्मावती, जयश्री, सुलेखा और मदनावली वहां आयीं। उन्होंने शिवदेव की अनुमति लेकर, मुनिराज को आहार दान दिया।

वे सोचने लगीं कि यह श्रावक कितना गरीब है, फिर भी इसने कितना श्रेष्ठ आहार दान दिया है। फिर भला लक्ष्मी इससे क्यों रुठी हैं? वे चारों कन्याएं बार-बार दान की प्रशंसा कर श्रद्धालु हो गयीं।

परम वीतरागी मुनीश्वर पारणा करके चले गए। तुम कुछ दूर तक उनके पीछे गए और लौट आए, इस तरह से भद्रे! तुमने उस समय जो पुण्यार्जन किया उसी का यह सिद्ध फल तुम्हें मिला है। तुम्हारे घर से वें चारों कन्याएं भी प्रसन्न होकर अपने-अपने घर चली गयी।

इस प्रकार तुम और वे कन्याएं सत्कार्य करते हुए जीवन पूर्ण होने पर मरण को प्राप्त हुए।

तो इस प्रकार तुम जीवदेव श्रेष्ठी की पत्नी जिनदत्ता के गर्भ से जिनदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुए। वे चारों कन्याएं भी अलग-अलग स्थानों पर जन्म लेकर भी तुम्हारी पत्नी बनीं।

हे भद्रे! यह सब उस आहार दान का ही महात्म्य है कि तुम इन चारों नारियों के साथ संसार सुख भोग रहे हो।

इस प्रकार उन दिव्य ज्ञानधारी परम गुरु श्री मुनीन्द्र ने जिनदत्त के पूर्वभव का स्पष्ट वर्णन किया। उसे सुनकर जिनदत्त को जाति स्मरण हो गया। वह उसी समय मूर्च्छित हो गये।

किन्तु शीघ्र ही उपचार किए जाने से जिनदत्त को होश आया। तब जिनदत्त ने अपनी

पूरी कथा सुनाई। फिर वह सोचने लगा कि आज इन साधु महाराज ने मेरा पूर्वभव बताकर मेरी निद्रा भंग की है। मैं आज जो कुछ बन सका हूँ वह सब आहार दान का फल है। वास्तव में दान सदैव विधिवत और भक्ति पूर्वक दिया जाना चाहिए। यदि इतने मात्र से जीव संसार के सुख प्राप्त कर सकता है तो विशेष त्याग से तो मोक्ष भी प्राप्त हो सकता है। इसलिए मुझे समस्त पाप भावों को त्यागकर आत्महित में प्रवृत होना चाहिए। इन मुनिराज के अमृत-वचनों से मेरा मन स्थिर हुआ है। कुछ विवेक जागा है। और मेरे हृदय में पूर्वभव की स्मृतियाँ जागी हैं।

अस्तु मैं इन्हीं श्री गुरु के पादमूल में पवित्र तप धारण करता हूँ। यह विचारकर जिनदत्त ने श्री गुरु को नमस्कार करके प्रार्थना करने लगा।

हे नाथ! इस संसार रूपी भयंकर जंगल में भटकते हुए जीवों को उपदेश देने वाला कोई अन्य नहीं है। केवल आप ही हैं। आप ही एक मात्र शरण हैं। मैं संसार से त्रस्त हूं। मुझ दुखी पर प्रसन्न होकर और मुझे मुनि दीक्षा देकर अनुग्रहीत कीजिए।

तब मुनिराज ने कहा- 'हे कुमार, तुम्हारे जैसे सुकुमारों को इतना कठोर तप शोभा नहीं देता क्या जाति पुष्प हिमपात को सहन कर सकता है? इसलिए तुम्हें चाहिए कि तुम गृहस्थ धर्म का ही पालन करो। श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा करो। प्रासुक आहार दो- यही तुम्हारे लिए उचित है।' तब जिनदत्त ने कहा- 'हे मुनिराज! गुरुजनों की बात का उत्तर देना उचित नहीं होता। तथापि मेरा निवेदन है कि आपने जिस तप को धारण किया है वह कठोर ही है। नरक भव के कष्ट भोगकर क्या कोई सुखी रह सकता है? और इस संसार में पुन: जन्म लेने पर भी आवश्यक नहीं है कि सभी सुख मिलेगें। वास्तव में जन्म-मरण का चक्र स्वयं ही महा दुखदायी है।

'हे नाथ, इस संसार में कोई भी ऐसा दुख नहीं है जिसे इस जीव ने न भोगा हो। हे प्रभु, आज आपकी कृपा से मुझे विवेक रूपी माणिक प्राप्त हुआ है। यदि गृहस्थ धर्म श्रावकों के लिए कल्याणकारी होती, अक्षय सुख देने वाली होती तो फिर आपका श्रमणत्व जो जगत में वंदनीय है, व्यर्थ हो जाता। साधु जनों का श्रम निर्थक हो जाता। अस्तु इस क्षण भंगुर असर संसार में एक मात्र सारभूत वस्तु जिन दीक्षा ही है। अस्तु मुझे उसी की शरण मिले, ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है। आप मुझे दीक्षा देकर मेरा कल्याण कीजिए।

मुनिराज ने कहा- 'तुम्हें जो अभीष्ट है, वहीं कार्य करो। तुम दिगम्बर दीक्षा से अलंकृत हो आत्महित करो।

गुरु की आज्ञा पाकर जिनदत्त ने अपने निकट बैठे मित्र मतिकुंडल से कहा- हे मित्र! आप शीघ्र ही मेरे पुत्रों को बुलाइए।

जब उसके पुत्र आ गए तो उसने ज्येष्ठ पुत्र से कहा- ' हे पुत्र ! तुम समझदार हो।
जैसे मेरे पिता तपस्वी हुए, वैसे ही मैं भी अब तप धारण करता हूँ। मैं तुम्हें अपना उत्तराधि
ाकारी बनाता हूँ। तुम सभी भाइयों के साथ समानता का व्यवहार करना। सदा दयाभाव
रखना। कभी क्रोध न करना।

तब ज्येष्ठ पुत्र सुदत्त ने कहा- ' हे पिताजी ! आप यह क्या कह रहे हैं? जिस संपत्ति
को आपने भोगा है वह मेरे लिए माता समान है। भला वह कैसे। मेरी हो सकती है?
इसलिए मैं भी दीक्षा ग्रहण करूँगा। आप तो मुझे मोह-अंधकार का मार्ग दिखा रहे हैं?
आप इन पुत्रों में से किसी को यह उत्तराधिकार दे दें। मैं तो आपके साथ ही जिन-दीक्षा
ग्रहण करुंगा।

पिता जिनदत्त और मित्र मतिकुंडल ने उसे बहुत समझाया। पर वह अपनी बात पर
अटल रहा। आखिर बहुत मनाने पर वह मान गया। तब पिता ने मंगलाभिषेक कर उसे
अपना उत्तराधिकार सौंप दिया। इसके बाद पुत्रों को भी यथा योग्य पद प्रदान किए।

अब उसने अपनी पत्नियों से कहा- ' हे देवियों, मुझे आप सब लोग मन, वचन, काय
से क्षमा करें। वे बोली- ' हे नाथ ! हमारी ओर से पूर्ण क्षमा है। आप भी हमारे समस्त
दुष्कृत्यों को क्षमा करें।

इस प्रकार कुमार जिनदत्त ने सभी बंधु-बांधवों से क्षमा कराकर आज्ञा ली और
जिन-दीक्षा धारण की। तब उसकी पत्नियों ने भी, अपने पति का अनुकरण करके दीक्षा
धारण की।

मुनिराज जिनदत्त स्वामी के निकट रहकर तपश्चरण किया। इसके उपरान्त वह विहार
करते हुए अन्य उग्र तपस्वियों के साथ श्री सम्मेद शिखर पर पधारे। अपने अंतिम समय
में उन्होंने सल्लेखना धारण की और सभी कर्मों का नाश करने वाली समाधि धारण
की। इस तरह चारों आराधनाएं- दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप को सिद्ध किया। शरीर
को कृशकाय बनाया, कषायों का नाश किया और अष्टम स्वर्ग प्राप्त किया।

जिनदत्त की पत्नियों ने भी आर्यिका व्रत धारण कर घोर तपश्चरण किया। अंत में
उन्होंने भी समाधि धारण की और उसी स्वर्ग को प्राप्त किया जिसमें श्री मुनिराज जिनदत्त
गए थे। वे सब मिलकर जिनदर्शन, वंदन, पूजन आदि धर्म कार्य में लीन हो गए।

-o-

आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला से प्रकाशित साहित्य

आपके परिवार के लिए अति ही उपयोगी साहित्य एवं जैन चित्र कथा

क्र.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य	क्र०	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
1.	तीन दिन में	20.00	33.	मंत्र महाविज्ञान	60.00
2.	भाग्य की परीक्षा	20.00	34.	ज्योतिष विज्ञान	60.00
3.	आटे का मुर्गा	20.00	35.	कर विज्ञान	30.00
4.	जो करों सो भरे	20.00	36.	साधु परिचय	50.00
5.	कवि रत्नाकर	20.00	37	वरांग चरित्र	50.00
6.	चमत्कार	20.00	38	बोलती माटी	250.00
7.	प्रद्युमन हरण	20.00	39	आखन देखी आत्मा	60.00
8.	सत्यघोस	20.00	40.	जैन ज्योतिष महाविज्ञान	160.00
9.	सात कोड़ियों में	20.00	41	भक्तामर सचित्र हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती	750.00
10.	टीले बाबा कीं	20.00			
11.	चन्दनवाला	20.00	42.	अभय कुमार	20.00
12.	ताली एक हाथ से बजती रही	20.00	43.	भजन रत्नाकर	35.00
13.	सिकन्दर और कल्याण मुनि	20.00	44.	रत्नाकर की लहरें	250.00
14.	चारित्र चक्रवर्ति	20.00	45.	दर्शन विधि	5.00
15.	रुप जो बदलता नहीं जाता	20.00	46.	जिन पूजा	5.00
16.	राजुल–हिन्दी–अंग्रेजी	20.00	47.	विमल भक्ति	10.00
17.	स्वर्ग की सीढ़ी	20.00	48.	आचार्य धर्मसागर पूजाञ्जलि	31.00
18.	मुनि रक्षा	20.00	49.	सज्जन चित्त बल्लभ	10.00
19.	मुक्ति का राही	20.00	50.	कमल श्री नाटक	10.00
20.	महादानी भामाशाह	20.00	51.	पंचकल्याणक	20.00
21.	प्रतिशोध	20.00	52.	समोसरण विधान	35.00
22	अभय कुमार	20.00	53.	अनासक्त योगी	30.00
23.	चेलना की विजय	20.00	54.	गेटवे ऑफ जैन धर्म	30.00
24.	पद्मावती देवी	20.00	55.	बाल भाग 1-2-3-4-5	25.00
25.	गाये जा गीत अपन के	20.00	56.	अनोखी कथाऐं 1 से 10 तक	20.00
26.	बाहुबली	20.00	57.	छह ढाला	10.00
27.	पारसनाथ	20.00	58.	शान्ति विधान	25.00
28.	भावना का फल	20.00	59.	नवग्रह विधान	20.00
29.	भगवान राम	25.00	60.	वास्तु विधान	20.00
30.	आओ बच्चों गाये गीत	20.00	61.	मृत्युंजय विधान	20.00
31.	साधना और सिद्धि	70.00	62.	दश लक्षण विधान	20.00
32.	ज्ञान विज्ञान	30.00			

प्राप्ति स्थान :– जैन मन्दिर गुलाब वाटिका लोनी रोड, दिल्ली फोन :– 0575-4600074

Vivek ©

EXCLUSIVE

SELLING AGENTS KAMAL TEXTILE

202A& B, PARARS BAZAR (2ND FLOOR)
GALI GHANTEWALI, CHANDNI CHOWK DELHI-6
PHONE : 326007,327554,3288558

प्रकाशन सहयोगी

श्री धर्मानुरागी श्रेष्ठी श्रीनिवास जी बड़जात्या
धर्मपत्नी श्री इंद्रावती देवी बड़जात्या
420 मिन्ट स्ट्रीट चैन्नई (मद्रास)